जयमाला

(दोहा)

चिन्मय हो, चिद्रूप प्रभु! ज्ञाता मात्र चिदेश।
शोध-प्रबंध चिदात्म के,[१] स्रष्टा तुम ही एक।।

जगाया तुमने कितनी बार! हुआ नहिं चिर-निद्रा का अन्त।
मदिर[४] सम्मोहन ममता का, अरे! बेचेत पड़ा मैं सन्त।।
घोर तम छाया चारों ओर, नहीं निज सत्ता की पहिचान।
निखिल जड़ता दिखती सप्राण, चेतना अपने से अनजान।।
ज्ञान की प्रति पल उठे तरंग, झाँकता उसमें आतमराम।
अरे! आबाल सभी गोपाल, सुलभ सबको चिन्मय अभिराम।।
किन्तु पर सत्ता में प्रतिबद्ध, कीर-मर्कट-सी[३] गहल अनन्त।
अरे! पाकर खोया भगवान, न देखा मैंने कभी बसंत।।
नहीं देखा निज शाश्वत देव, रही क्षणिका पर्यय की प्रीति।
क्षम्य कैसे हों ये अपराध? प्रकृति की यही सनातन रीति।।
अतः जड़-कर्मों की जंजीर, पड़ी मेरे सर्वात्म प्रदेश।
और फिर नरक-निगोदों बीच, हुए सब निर्णय हे सर्वेश।।
घटा घन विपदा की बरसी, कि टूटी शंपा मेरे शीश।
नरक में पारद-सा तन टूक, निगोदों मध्य अनंती मीच।।
करें क्या स्वर्ग सुखों की बात, वहाँ की कैसी अद्भुत टेव!
अंत में बिलखे छह-छह मास, कहें हम कैसे उसको देव!
दशा चारों गति की दयनीय, दया का किन्तु न यहाँ विधान।
शरण जो अपराधी को दे, अरे! अपराधी वह भगवान।।
"अरे! मिट्टी की काया बीच, महकता चिन्मय भिन्न अतीव।
शुभाशुभ की जड़ता को दूर, पराया ज्ञान वहाँ परकीय।।

---

१. आत्मा के शुद्धि-विधान की शोध २. मादक ३. तोता और बंदर जैसी ४. बिजली ५. मृत्यु

अहो 'चित्' परम अकर्त्तानाथ, अरे! वह निष्क्रिय तत्त्व विशेष।
अपरिमित अक्षय वैभव-कोष'', सभी ज्ञानी का यह परिवेश[१]।।
बताये मर्म अरे! यह कौन, तुम्हारे बिन वैदेही नाथ?
विधाता शिव-पथ के तुम एक, पड़ा मैं तस्कर दल के हाथ।।
किया तुमने जीवन का शिल्प[२], खिरे सब मोहकर्म और गात[३]।
तुम्हारा पौरुष झंझावात[४], झड़ गये पीले-पीले पात।।
नहीं प्रज्ञा-आवर्त्तन[५] शेष, हुए सब आवागमन अशेष।
अरे प्रभु! चिर-समाधि में लीन, एक में बसते आप अनेक।।
तुम्हारा चित्-प्रकाश कैवल्य, कहें तुम ज्ञायक लोकालोक।
अहो! बस ज्ञान जहाँ हो लीन, वही है ज्ञेय, वही है भोग।।
योग-चांचल्य[६] हुआ अवरुद्ध, सकल चैतन्य निकल निष्कंप।
अरे! ओ योगरहित योगीश! रहो यों काल अनंतानंत।।
जीव कारण-परमात्म त्रिकाल, वही है अंतस्तत्त्व अखंड।
तुम्हें प्रभु! रहा वही अवलंब, कार्य परमात्म हुए निर्बन्ध।।
अहो! निखरा कांचन चैतन्य, खिले सब आठों कमल[७] पुनीत।
अतीन्द्रिय सौख्य चिरंतन भोग, करो तुम धवलमहल के बीच।।
उछलता मेरा पौरुष आज, त्वरित टूटेंगे बंधन नाथ!
अरे! तेरी सुख-शय्या बीच, होगा मेरा प्रथम प्रभात।।
प्रभो! बीती विभावरी[८] आज, हुआ अरुणोदय शीतल छाँव।
झूमते शांति-लता के कुंज, चलें प्रभु! अब अपने उस गाँव।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपदप्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

चिर-विलास चिद्ब्रह्म में, चिर-निमग्न भगवंत।
द्रव्य[९]-भाव[१०] स्तुति से प्रभो!, वंदन तुम्हें अनंत।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

---

१. शुद्ध अन्तस्तत्त्व का आनंदभवन २. पुष्ट ३. अविलम्ब ४. महोत्सव ५. दशधर्मों
६. अंतरंग प्रदूषण ७. आनन्द-समाधि ८. अमृत ९. शून्य चैतन्य १० बिखरे हुए